समकालीन आदिवासी कविता – दशा एवं दिशा

नन्हकू प्रसाद यादव,
शोधार्थी,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ (उ0प्र0)

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,
अध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ (उ0प्र0)

शोध सारांश

आदिवासी जीवन दर्शन की यथार्थ अभिव्यक्ति उनकी मौखिक परम्परा में मौजूद है। समकालीन कविता आदिवासियों के समग्र जीवन को विभिन्न भाषाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति कर रही है। वर्तमान औद्योगीकरण ने आदिवासी समाज के सामने कई समस्याएँ खड़ी कर दी है। जिससे आदिवासी विस्थापन, पलायन एवं शोषण के चक्रव्यूह में फँस गये। समकालीन कविता आदिवासियों की इन्ही समस्याओं को विभिन्न भाषाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति कर रही है। वहीं दूसरी ओर आदिवासी संस्कृति के मानवतावादी मूल्यों को भी उजागर कर रही है। निश्चित रूप से समकालीन कविता आदिवासी जीवन को शोषण से मुक्त करके एक आदर्श समाज बनाने में कारगर होगी।

KeyWords: *आदिवासी कविता, मौखिक परम्परा, विस्थापन, शोषण*

आदिवासी जीवन दर्शन से सम्बन्धित कविता की बात की जाय तो लोक साहित्य के रूप में मौखिक परम्परा की समृद्ध धरोहर सामने आती है।मौखिक परम्परा मुख्य रूप से ज्ञेय रूप में रही है। समकालीन कविता के दृष्टिकोण से देखे तो आदिवासी जीवन के विविध पक्ष उनकी आंचलिक भाषाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति हुए हैं। आदिवासी जीवन दर्शन की मौखिक परम्परा तो बहुत प्राचीन है, लेकिन हिन्दी भाषा में आदिवासी कविता का अभी शुरूआत दौर ही है।

आदिवासी कविता या साहित्य किसे कहा जाय ? आदिवासी समाज की संवेदनाओं को अभिव्यक्ति करने वाली कविताएं या आदिवासी साहित्यकारों द्वारा लिखित कविताओं को ही आदिवासी कविता कहते हैं। परन्तु कोई भी आलोचक इस बात को नकार नहीं सकता कि आदिवासी वर्तमान में भी शिक्षा व्यवस्था से मीलों दूर है। इस स्थिति में वह अपने समाज की संवेदनाओं, विचारों एवं अपनी भावनाओं को अपनी विशिष्ट मौखिक परम्परा में ही अभिव्यक्त करता है।

आदिवासी कविता के बारे में विनायक तुमराव लिखते हैं, ''वनवासियों का क्षत जीवन जिस संस्कृति की गोद में छुपा रहा, उसी संस्कृति के प्राचीन इतिहास की शुरुआत करने वाला है यह साहित्य। आदिवासी साहित्य इस भूमि से प्रसूत आदिम वेदना तथा अनुभव का शब्द रूप है।''[1]

आदिवासी कविता की वास्तविकता यह है कि आदिवासियत एवं आदिवासियों की संस्कृति, प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व की भावना, उनकी भाषा, संवेदना आदि समग्र आदिम जीवन से

घनिष्ट रखने वाली कविता को आदिवासी कविता कह सकते हैं।

समकालीन कविता के विषय में निष्कर्षः कह सकते हैं कि जिस कविता में आदिवासियों का समग्र जीवन, उनका त्रासद दुःख, उनकी मानवीय मूल्यों से समृद्ध संस्कृति एवं पारम्परिक मान्यताओं को उनके यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया जाता है, उसे समकालीन आदिवासी कविता कह सकते हैं।

वर्तमान में देश के समस्त भागों में आदिवासी साहित्यकार अपनी–अपनी भाषा में अपने समाज की भावनाओं को अभिव्यक्त कर रहे हैं। इन कवियों ने आदिवसी विमर्श के स्वर को बुलंद किया है। हिन्दी भाषा में प्रसिद्ध चिन्तक हरिराम मीणा, डॉ0 रामदयाल मुण्डा, महादेव टोम्पों, हजारी लाल मीणा 'राही', निर्मला पुतुल, सहदेव सोरी, मीरा राम निवास, मोतीलाल, शंकरलाल मीणा, सरिता सिंह बडाइक, सोना सिंह पुजारी, रोज केरकेट्टा एवं ग्रेस कुजुर इत्यादि आदिवासी रचनाकार अपनी कविता में आदिवासियों की भावनाओं को मुखरित कर रहे हैं।

समकालीन आदिवासी कविता में विस्थापन के दर्द पर बहुत लिखा जा रहा है। औद्योगीकरण के नाम पर आदिवासियों को अपने खेत, जंगल–जमीन देकर कीमत चुकानी पड़ी। औद्योगीकरण में आदिवासी बाधक बनने लगे जिसके कारण उन्हे विस्थापित होने पर बाध्य होना पड़ा। विस्थापन की पीड़ा पर रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि ''विकास के नाम पर बरती गई नीतियों के कारण अपनी जमीनों, जंगलों, संसाधनों व गाँवों से ही बेदखल नहीं हुए बल्कि उनके मूल्यों, नैतिक अवधारणाओं, जीवन–शैलियों, भाषाओं एवं संस्कृति से भी बेदखल हो गये।''[2]

आदिवासी क्षेत्रों मे पूँजीपतियों की घुसपैठ मुख्य समस्या बन गयी है, जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी जीवन शैली प्रदूषित हो गयी और अन्ततः आदिवासी अस्तित्व का ही संकट खड़ा हो गया, जिसके विषय में कवयित्री ग्रेस कुजूर अपनी कविता में लिखती हैं कि–

''हे संगी क्यों घूमते हो/ झुलाते हुए खाली गुलेल क्या तुम्हे अपनी धरती की/ सेंधमारी सुनायी नहीं दे रही ''[3]

औद्योगीकरण के कारण हजारों वर्षों से सुरक्षित प्राकृतिक सम्पदा उजड़ रही है। जंगल प्राकृतिक सम्पदा से रहित भाँय–भाँय करने लगे। पेड़ों पर कहीं कोई पंक्षी नहीं दिखाई देता और न ही नदियों में मछलियाँ। इन सबको देख कवयित्री का मन विद्रोह की ज्वालाग्नि से सुलग उठता है, वह कहती है कि

''संगी रे न जाने कौन से देश उड़े/क्षितिज के पार वे/हरे खेतों में विचरते बगुले/ नहीं खेलती झूमर अब/'डोभा' के पानी में /गीतू और 'बुदु' मछलियां/फंसने लगे हैं क्यों/ 'कुमनी' में/ 'ढोद' बहुत दुमुंहे ?/और बार–बार फिसलने लगी है क्यों,/हथेलियों से जिन्दगी यहाँ/ मांगुर की तरह? ''[4]

आदिवासी जीवन शैली प्रकृति पर निर्भर है। प्राकृतिक संसाधनो के अभाव में उसके जीवन की कल्पना भी सम्भव नहीं, प्रकृति एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों के साथ छेडछाड़ आदिवासियों के लिए आत्यन्यिक पीड़ा की बात है। संथाली कविता में इसके विषय में कहा गया हैं–

''ढह गई पहाड़ी/भसकी छोटी पहाड़ी/ उल्टी पुल्टी हो गयी दुनिया/ ओ मेरे भाई..... /तो ठीक नहीं तो /हमें सौपा है हमारे पूर्वजों ने/धन सम्पदा से सम्पन्न । अपना राज्य मानवता से परिपूर्ण।''[5]

प्राकृतिक संसाधनों के साथ बेरहम छेड़खानी केवल आदिवासियों के अस्तित्व के लिए ही संकट नहीं है,बल्कि यह सम्पूर्ण मानवता एवं मानवेत्तर प्राणी जगत के लिए भी बड़ा खतरा है। आदिवासी कविता प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा के

लिए पर्यावरण प्रेमियों के साथ भी सुर मिलाती है। ग्रेस कुजुर कहती हैं–

''इसलिए फिर कहती हूँ/ न छेड़ों प्रकृति को
अन्यथा यह प्रकृति करेगी भंयकर बगावत
और तब न तो तुम होगें न हम होगें।''[6]

आदिवासी सैकड़ो वर्षों से प्रकृति पर निर्भर रहे हैं,जिससे प्रकृति एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है जो वर्तमान औद्योगीकरण के कारण गड़बड़ा रहा है ग्रेस कुजूर के ही शब्दों में–

'' अब कहाँ है वह अखरा (नृत्य स्थल)
किसने उगाए हैं वहाँ
विषैले नागफनी
बार–बार उलझता है जहाँ तोलोंग का फुंदना ''[7]

आदिवासी अपने आदिम स्वभाव से ही बहुत सीधे व भोले होते हैं वह हर तरह मैल–वंचित रहे हैं। वे पूँजीपतियों की उन साजिशों को नहीं समझते जो उनके विरूद्ध पनपती जा रही हैं। समकालीन आदिवासी कविता इन साजिशों को पहचानने लगी है। कवयित्री निर्मला पुतुल लिखती हैं–

'' इन खतरनाक शहरी जानवरों को पहचानों चुड़का सोरेन
तुम्हारे भोलेपन की ओट में
इस पेचदार दुनिया में रहते
तुम इतने सीधे क्यों हो चुड़का सोरेन ?''[8]

समकालीन आदिवासी कविता में समाज के आधे हिस्से स्त्रियों को भी महत्वपूर्ण स्थान मिला है। आदिवासी समाज में स्त्रियों के लिए कुछ परम्परागत मान्यताएँ है जो आदिवासी स्त्री के विकास में बाधक बनी है अन्य समाजों की तरह आदिवासी समाज भी पुरुष प्रधान व्यवस्था में स्त्रियों का शोषण करता है। कवयित्री निर्मला पुतुल आदिवासी समाज में हो रही स्त्री की आलोचना पर अपनी कविता 'क्या तुम जानते हो' में स्त्री के अन्तर्मन को टटोलने की बात करती हैं और कहती हैं–

''घर, प्रेम और जाति से अलग/ एक स्त्री को उसकी अपनी जमीन/ के बारे में बता सकते हो तुम?/ बता सकते हो/ सदियों से अपना घर तलाशती/ एक वेचैन स्त्री को/ उसके घर का पता/ तन के भूगोल से परे/ एक स्त्री के / मन की गाँठे खोलकर/ कभी पढ़ा है। अगर नहीं।/ तो फिर क्या जानते हो तुम/ रसोई और विस्तर के गणित से परे/ एक स्त्री के बारे में..... ? ''[9]

आदिवासी, स्त्री का शोषण, उत्पीड़न उसका समाज ही नहीं करता बल्कि अन्य समाज भी करते हैं। अण्डमान दीप समूह के लिए पर्यटन पर जाने वाले सेनानी भी आदिवासी स्त्रियों का शोषण करते हैं जिसे प्रसिद्ध आदिवासी चिन्तक हरिराम मीणा अपनी कविता 'वह 'जारवा' औरत' में लिखते हैं–

''वह आयी नहीं थीं/ आ ही नहीं सकती थी/ आखेट के दौरान रुकी थी/ प्रसव वेदना से ..... / नहीं स्वीकारा उसे उसके लोगों ने वह पुनः गर्भवती जो थी/..... वह बहुत रोई/ बहुत गिड़ गिड़ाई/ ''मेरा कोई दोष नहीं..... ...../ मैनें कोई पाप नहीं किया। जो कुछ किया चौकीदार ने किया''/ वे नहीं माने/ और उनकी टोली धंस गई जंगलों में / उसे अकेला छोड़कर/ ..... जब होश आता है तो/ वह रहती है चुपचाप जब वेहोश होती है। तो भागती है घने जंगलों में वह।''[10]

प्रसिद्ध आदिवासी चिंतक हरिराम मीणा आदिवासियों की समस्याओं को अपनी कविता में अभिव्यक्त करते है। वह कहते हैं कि आदिवासी प्रकृति के भीषण उत्पात को झेलता है लेकिन कभी भी प्रतिरोध की भावना से उन्हें क्षति नहीं पहुँचाता। आदिवासी प्रकृति को विना क्षति पहुँचाए उसके बीच रहते हैं लेकिन कभी भी अपने को

वेधर महसूस नहीं करते। लेखक लिखता है–''हमें पता नहीं/ हम बंदर की औलाद हैं/ या भागवान की मंसा मगर पैदा आदम–जात ही में हुए/ नहीं छेड़ी हमने हिफाजती मुहिम/ मौसम के खिलाफ/घर नहीं बनाये। मगर वेघर महसूस नहीं किया/ रहे अपरिग्रही फिर भी घनी/ तूफानों से हमारा कुछ नहीं विगड़ा/ यहाँ तक कि– भूकंप और ज्वालामुखियों ने भी/ हमें नहीं उजाड़ा/मगर–जिन्होंने हमें गोलियों से भूना/ वे इंसान थे।''[11]

समकालीन आदिवासी कवियों में शंकरलाल मीणा का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होने पूँजीवादी व्यवस्था के उन शोषको की पोल खोली है जो आधुनिकता के बहाने आदिवासी मानवीय मूल्यों को नष्ट करने पर तुले है। उन्होनें अपनी कविता (परदेशी सौदागर) में शोषक वर्ग के विविध रूपों से उजागर करके लिखते हैं कि–

''बरसों बाद फिर आया है। परदेशी सौदागर/हमारी सांस्कृतिक जड़ता को तोड़ने के लिए/ कई चीजें है सौदागर के पास/ गरीबी को अमीरी में बदलने के लिए/ रातों रात/ कई उत्पात हैं सौदागर के पास पचास रुपये का चाकलेट/सौ रुपये का हम्बर्गर/ तंम्बाकू के साथ तपेदिक की टेबलेट/ वीडियों गेम्स के साथ/ मिर्गी के इंजेक्शन/ ब्लू फिल्मों के साथ/ एड्स का टीका/ हर सुन्दरी कोशिश करती है। मदर टेरेसा बनने की/ नेल्सन मंडेला होने की। पर कुछ नहीं कर पाती। सिवाय सौदागर के बनाए। साबुन, शैम्पू, पेस्ट और सेनेटरी नैपकीन बेचने के।''[12]

आदिवासी कविता के विद्रोह कवि भुजंग मेश्राम ने गोंडी भाषा में आदिवासी कविता संग्रह का प्रकाशन किया। भुंजग मेश्राम आदिवासियों में काव्य के माध्यम से आने वाले कल के निर्णायक युद्ध के लिए उनका मन तैयार करने पर बल देते हैं। उनकी कविता में आदिवासी मानवीय मूल्य यथा–स्वतन्त्रता, समता, एवं बन्धुन्ता को स्वीकार कर अन्धविश्वासों को विरोध किया गया है। उनकी कविता क्रान्ति की संबाहक है। डॉ0 विनायक तुमराव कहते हैं– ''भुजंग मेश्राम की कविताएँ आदिवासियों के वर्तमान जीवन की व्यथा– वेदना व्यक्त करने वाली हैं। परिवर्तन इन कविताओं का स्वप्न है। इसलिए आदिवासियों के सांस्कृतिक और सामाजिक दोषों के प्रति वह क्षमाशील नहीं है। रूढ़ि परम्परा और अन्धविश्विास में बहने वाली आदिम मानसिकता को नर वातावरण की तरफ ले जाने वाली कविता है।''[13]

आदिवासी साहित्य के दूसरे महत्वपूर्ण कवि वाहरू सोनवणे ने अपने कविता संग्रह 'गोधड़' में भारतीय न्याय व्यवस्था की खामियों को अभिव्यक्त किया है। उनका मानना है कि विषमता पर आधारित भारतीय न्याय व्यवस्था आदिवासियों को न्याय नहीं दे सकती। यहाँ का कानून भले की बराबरी पर आधारित है लेकिन न्याय देने वाले व्यक्ति की संकुचित मानसिकता के कारण उसे दोषी करार देने में ही इस्तेमाल होता है। इसलिए कवि बराबरी के लिए रक्त–रंजित क्रान्ति को ही पसन्द करते हैं।

''जख्मों से जागता हूँ मैं/जख्म ही जगाते हैं मेझे

मानवता की राह पर चलना/ जख्म ही दिखाते है मुझे।''[14]

कविता के महत्वपूर्ण कवि विनायक तुमराव ने 'गोंडवन के पेटले आहे' नामक महत्वपूर्ण कविता संग्रह लिखा। वे आदिवासी संस्कृति के मानवतावादी मूल्यों की प्रसंशा करते हैं। इन्हीं मूल्यों के आधार पर आदिवासी साहित्य की जाति और कुल भी निर्धारित होगें। आप भारतीय वर्ण व्यवस्था को आदिवासियों के शोषण का कारण मानते हैं। क्योंकि वर्ण व्यवस्था मानवीय मूल्यों एवं समता को महत्व नहीं देती। वर्ण व्यवस्था के कारण ही आदिवासियों पर अनेक अत्याचार किये। इस व्यवस्था ने मनुष्यों का मनुष्य के रूप में जीना हराम कर दिया।

भारतीय वर्ण व्यवस्था पर बलि चढ़े आदिवासी एकलब्य एवं कर्ण से वे अपना सूत्र जोड़ते हैं। वन्य जीवन के पेट से जन्में एकलब्य के धनुर्धारी जीवन का बध उन्हें अपने विद्रोह का आरम्भ बिन्दु महसूस होता है। जुल्मी वर्ण व्यवस्था से व्यथित कवि कहता हैं–

''एकलब्य, तुम्हारे सपनों के सूर्यास्त के लिए/ मै रक्तिम क्षितिज नहीं बन सका /एकलब्य तुम्हारे बहिष्कृत नेत्रों के तप्त आँसुओं की ठंडा करने वाला सागर नहीं बन सका/ जिस समय कपट करके गुरु ने दक्षिणा ली इच्छा हुई होगी/ वनपुत्र/ उस समय वेदनाा का ढेर बन गया होगा त।''[15]

आदिवासी कविता में वास्तविकता को महत्वपूर्ण मानने वालों में प्रो0 वामन शेलमार्क महत्वपूर्ण हैं। उनकी कविता सत्य का स्पर्श है। उन्होंने काव्यरूपी अग्निपुष्प अर्पण करते हुए मनुष्य के मूल्य के प्रति आशा व्यक्त की है। कवि कहता है कि ''देश के सच्चे भूमिपुत्र घने जंगलों और पहाड़ की कन्दराओं में संघर्षशील जीवन जीते हैं। समाज के र्पस्थापित लोग अत्यन्त्र धूर्तता से आदिवासियों को कांटेदार पिजरे में बन्दी बनाकर, आदिवासी संस्कृति का गुणवान करके धंधा कर रहे हैं। आदिपुत्रों को गुलामी के जुए से बाहर निकालने के लिए वन पुत्रों की मुक्ति के लिए ही वामन शेलमार्क की कविता अवतरित हुई है।''[16]

प्रो0 वामन शेलमार्क आदिवासियों की सामूहिक भावना का आह्वान करते हुए कहते है कि–

''हे वनपुत्रों, यहाँ जीवन/ सजाना पड़ता है/ आँख को मत्यु की दिशा दिखवाकर/ जिन्होंने समस्त आदिपुत्रों का किया शोषण /उनके रक्त से ही लिखना होगा/ रक्त रंजित इतिहास।''[17]

प्रो0 शेलमार्क भारतीय वर्ण व्यवस्था को आदिवासियों एवं दलितों के लिए बड़ी घातक बताते हैं। वे आदिवासियों से ऐसी खोखली मानवता का बहिष्कार करने को कहते हैं। प्रो0 शेलमार्क वैयक्तिक स्तर पर लिखने के बजाय सामूहिक मुक्ति की कामना करना चाहते है। वे आदिवासियों से सारे बन्धन तोड़कर उत्थान का मार्ग खोजने का आह्वान करते हैं।

आदिवासी कविता को महत्वपूर्ण आयाम देने में आदिवासी कवयित्री उषाकिरण आत्राम का महत्वपूर्ण स्थान है। कवयित्री ने अपने कविता संग्रह 'म्होरकी' को संसार के तमाम शोषित पीड़ित, अन्याय ग्रस्त, महात्यागी, जगनिर्मात्री, जाग्रत, माता–बहनों और ईमानदार आदिवासी शोषित समाज के समर्पित किया है। कवयित्री आदिवासी मानवता एवं मानवेत्तर प्राणी जगत के प्रति सम्मान की भावना रखते हुए कहती हैं कि–

''पत्थर के देवता के मन्दिर में/ बजते घंटे को/ सुनकर दौड़ पडता है गाँव/ पर मैं हाड़–मांस का आदमी/ आक्रोश से भर उठ़ता हूँ/ देखकर मेरा गुस्सा/ भाग उठता है गाँव मुझसे दूर अनादिकाल से ही है जारी/ यह प्रवास।''[18]

समकालीन कवियों की कविता का मुख्य विषय सभी प्रकार के शोषण से मुक्ति का है। आदिवासी समाज जुल्म एवं अमानवीय जीवन से मुक्त हो। समाज में समरसता रूपी सुसंगति बने। पूरे विश्व में समता की भावना आये। यह समता, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक स्तर पर होनी चाहिए। तभी मानवता रूपी नंदन वन फले–फूले, सारा जीवन सुगन्धित हो।

कवयित्री उषा किरण आत्राम मुख्य धारा के लोगों द्वारा आदिवासी संस्कृति को विकृत दर्शाने पर कहती है कि मुख्य धारा की बहुत सुसंस्कृत कही जाने वाली संस्कृति में भडुवागिरि, बलात्कार, छेडछाड़ आदि कितना कुछ होता है फिर भी तुम उस संस्कृति को सभ्य समाज की श्रेष्ठ संस्कृति मानते हों। आदिवासी संस्कृति का केन्द्र 'गोटलू' होता है। आदिवासी मडिया जाति

में 'गोटलू' का असाधारण महत्व होता है। 'गोटलू' के आदिवासी प्रकृति और चाँदनी रात को साक्षी मानकर बेसुध होकर नाचते गाते है। प्रेमी–प्रेमिका, यहीं अपने जीवन साथी का चुनाव करते है। इसके बाद भी मुख्य धारा के लोग 'गोटलू' को विकृत रूप से प्रस्तुत करते है। जिसमें क्रोधित हो कवयित्री कहती हैं कि–''हम मात्र/चाँदनी को साक्षी मान/चयन करते जीवन साथी का आते है गोटलू में/ तब तुम कहते हो/ गोटलू ?यानी क्या ? व्याभिचार और स्वेच्छाकार को केन्द्र/ है क्या ? वह भड़वागिरी (वेश्यावृत्ति) नहीं करते/ चाहें तो हजारों वर्षा का इतिहास/ उलट–पुलटकर देख लो जरा।''[19]

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में आदिवासियों ने बहुत बड़ा योगदान दिया। इसके बाद भी भारतीय इतिहास में आदिवासी स्वतन्त्रता सेनानियों को स्थान नहीं दिया गया। आदिवासियों ने अपने जल–जंगल–जमीन की रक्षा के लिए दो शताब्दियों तक अंगेजों से डटकर लोहा लिया। अंचल–अंचल से शुरू हुआ यह संघर्ष पूरे देश में अलखनाद तक पहुँचा। आदिवासी इतिहास में युयों–युगों तक चलने वाला लम्बा संघर्ष है जिसे इतिहास में दर्ज नहीं किया गया। यह लम्बा संघर्ष, गांथाएं एवं गीत समकालीन कविता को समृद्ध कर रहे हैं। प्रसिद्ध आदिवासी कवि महादेव टोप्पों अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हैं–

''तुम्हारी विजय गाथाओं और संघर्षों के गवाह/पेड़ हैं, नदियाँ है, चट्टाने हैं/ पुरखों की आत्माएँ हैं/ ससनदिरी हैं/ जाहेर थान हैं/तुम्हारे लोक– गीत हैं.....''[20]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन कविता में आदिवासी जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया गया है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का आदिवासियों पर बड़ा ही दूर–गामी प्रभाव पड़ा है। आदिवासी कवि समकालीन कविता में अपने परिवेश की बात को अपनी भाषा में अभिव्यक्त कर रहा हैं। आदिवासी कविता की भाषा भी उनके अंचलों से जुड़ी है। आदिवासी साहित्यकार आदिवासी जीवन शैली के विविध अवयव यथा–रूढ़ि परंपरा, लोकगीत,संगीत के साथ ही नदी, पेड़, पौधे, जंगली जानवर, पहाड़ खेती एवं समृद्ध संस्कृति को अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त कर उनका महत्व स्थापित करते हैं। आदिवासी समाज न कभी गुलाम बना है न बनेगा, इसके बाद भी सभ्य समाज ने उनके साथ छल किया। समकालीन कविता में आदिवासियों के प्रकृति संरक्षण को बहुत महत्व दिया जा रहा है। वे उनके समाज के मानवीय मूल्यों को आधुनिक समाज के मूल्यों से जोड़ा जा रहा है। जिससे सभ्य समाज उनके उपयोगी मूल्यों से लाभान्वित हो सके।

सन्दर्भ

1. गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी समाज और साहित्य, सामयिक पेपर बैक्स ,नई दिल्ली, संस्करण– 2016, पृष्ठ–16–17
2. गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी विकाश से विस्थापन, राधा कृष्ण प्रकाशन ,दिल्ली, संस्करण–2018, पृष्ठ–01
3. गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन नई ,दिल्ली, संस्करण–2002, आवृत्ति–2017, पृष्ठ–22
4. गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन नई ,दिल्ली, संस्करण–2002, आवृत्ति–2017, पृष्ठ–22
5. मीणा हरिराम, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत संस्करण– 2013 आवृत्ति–2016, पृष्ठ–201
6. ग्रेस कुजूर की कविता 'हे समय के पहरेदारों' शीर्षक कविता से, गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2002, आवृत्ति–2017, पृष्ठ–24

7. गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2002, आवृत्ति–2017, पृष्ठ–21
8. निर्मला पुतुल की चुड़का सोरेन शीर्षक कविता से, गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2002, आवृत्ति–2017, पृष्ठ–76
9. निर्मला पुतुल, 'क्या तुम जानते हों' शीर्षक कविता से,गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2002, आवृत्ति–2017, पृष्ठ–72
10. हरिराम मीणा, ''वह 'जारवा' औरत शीर्षक कविता से, गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2002, आवृत्ति–2017, पृष्ठ–32
11. हरिराम मीणा, 'खत्म होती हुई एक नस्ल' शीर्षक कविता से गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण–2002, आवृत्ति–2017, पृष्ठ–28
12. शंकर लाल मीणा 'परदेशी सौदागर' शीर्षक कविता से, गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2002, आवृत्ति–2017, पृष्ठ–34–35
13. डॉ0 राजेन्द्र ठाकरे 'आदिवासी कविता शीर्षक लेख से, गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी साहित्य यात्रा, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2016, पृष्ठ–54
14. डॉ0 राजेन्द्र ठाकरे 'आदिवासी कविता शीर्षक लेख से, गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी साहित्य यात्रा, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2016, पृष्ठ–58
15. डॉ0 राजेन्द्र ठाकरे 'आदिवासी कविता शीर्षक लेख से, गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी साहित्य यात्रा, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2016, पृष्ठ–59–60
16. डॉ0 राजेन्द्र ठाकरे 'आदिवासी कविता शीर्षक लेख से, गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी साहित्य यात्रा, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2016, पृष्ठ–63
17. डॉ0 राजेन्द्र ठाकरे 'आदिवासी कविता शीर्षक लेख से, गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी साहित्य यात्रा, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2016, पृष्ठ–63–64
18. डॉ0 राजेन्द्र ठाकरे 'आदिवासी कविता शीर्षक लेख से, गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी साहित्य यात्रा, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2016, पृष्ठ–65
19. डॉ0 राजेन्द्र ठाकरे 'आदिवासी कविता शीर्षक लेख से, गुप्ता रमणिका (सं0) आदिवासी साहित्य यात्रा, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण– 2016, पृष्ठ–70
20. हरिराम मीणा, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, संस्करण– 2013 आवृत्ति–2016, पृष्ठ–206